महर्षि–याज्ञवल्क्य

रामानन्द शास्त्री

महान योगी, ज्ञानी, धर्मात्मा महर्षि याज्ञवल्क्य को पुराणों के अनुसार ब्रह्मा का अवतार बताया गया है। श्रीमद्भागवत् में (12/06/04) में इन्हें देवरात का पुत्र बताया है और महर्षि वैशम्पायन के शिष्य हैं। इनके योगी, धर्मवेत्ता, ज्ञानी होने की बडी अद्भुत बातें शास्त्रों में मिलती हैं। इन पर बहुत शोध करने की आवश्यकता है। भारतीय संस्कृति के ये दिव्य-रत्न ही संस्कृति के धरोहर है। महर्षि याज्ञवल्क्य भारतीय तत्त्वज्ञान के जनक (Father of Indian Philosophy) के रूप में प्रसिद्ध हैं। प्राचीन वैदिक काल ऋषियों के वैभव का काल था। इनके जीवन की घटनाओं से ऋषियों के दिव्य प्रभाव की जानकारी मिलती है। जीवन में तेज, अलौकिक बुद्धि, लोकोत्तर धारणा शक्ति व स्मरण शक्ति की होड सी लगने वाला वह काल था। श्वेतकेतु, नचिकेता, सत्यकाम जाबाल जैसों का वह काल था। ऐसे प्रखर विद्वानों और तत्त्ववेत्ताओं के काल में जो अध्ययन 25 वर्षों में भी पूरा नहीं होता था, उसे 5-7 वर्ष में पूर्ण करके याज्ञवल्क्य, उद्दालक के आश्रम में जाने के लिए निकले। वैशम्पायन ने इच्छा न होते हुए भी याज्ञवल्क्य की विद्या-क्षुधा, ज्ञज्ञन-पिपासा को देखकर अनुमति दे दी। वहाँ अध्यात्म ज्ञान पूर्ण अर्जित करके शाकल्य मुनि के आश्रम में आये। सभी आश्रमवासी आश्चर्यचकित हुए कि हिरण्यकेशी यजुर्वेद शाखा का उपासक याज्ञवल्क्य स्वयं चलकर आया है। इसलिए वह उन्हें एक महान क्रान्तिकारी व सुधारक लगा।

वहाँ विद्याप्रेमी एवं विद्या विस्तारक राजा सुप्रिय शाकल्य मुनि के आश्रम को सहायता प्रदान करता था। अतः आश्रय का नियम था कि कोई एक शिष्य राजा को तीर्थ (चरणामृत) देने जाता था। एक दिन शाकल्य मुनि ने याज्ञवल्क्य को इस कार्य हेतु कहा तो याज्ञवल्क्य को थोडा अखरा परन्तु गुरु आज्ञा मानकर चला गया। महल के पहरेदारों ने ब्राह्मण व आश्रम का छात्र समझ कर उसे रोका नहीं। अतः वह सीधा राजमहल के अन्दर चला गया।

महल के अन्दर के दृश्य को देखकर राजा की विलासी के कारण राजा के प्रति तिरस्कार व घृणा का भाव उत्पन्न हो गया। 'कामातुराणां भयं न लज्जा' ऐसा निर्लज्ज राजा ने कहा, यदि लाया है तो कहीं छिड़क दे। याज्ञवल्क्य ने फिर पूछा– यह तीर्थ तेरे भाग्य में नहीं है, पर बोल कहाँ छिड़कूँ। तब राजा ने तिरस्कारपूर्वक कहा– इस खम्भे पर छिड़क दे। याज्ञवल्क्य ने तीर्थ जड़ खम्भे पर छिड़क दियहा। तीर्थ छिड़कते ही निष्प्राणजड़ स्तम्भ में चैतन्य निर्माण हो गया और वह स्तम्भ पल्लवित व पुष्पित

होकर खिल उठा। यह देखकर राजा घबड़ा गया। क्षमा याचना की। याज्ञवल्क्य ने कहा तुमने तीर्थ का अपमान किया है, उसका फल भोगना ही पडेगा। यह कहकर आश्रम में लौट आया।

दूसरे दिन राजा आश्रम में गया और शाकल्य मुनि से उसी याळवल्क्य को ही भेजने के लिए निवेदन किया। शाकल्य मुनि ने याज्ञवल्क्य से फिर कहा कि राजा सुप्रिय आश्रम का आश्रयदाता है, अतः उसके शब्दों का सम्मान करना चाहिए। शाकल्य मुनि को राजमहल में घटी घटना का पता नहीं था। अतः राजा को वचन दे दिया कि तीर्थ लेकर याज्ञवल्क्य आयेगा।

याज्ञवल्क्य गुरु की कठिनाई को समझ गये और बोले– 'गुरुजी! मैं आपकी परेशानी को समझ गया हूँ, मेरे प्रेम के कारण आप आश्रम से चले जाने नहीं कह सकते और मुझसे आपकी आज्ञा का पालन नहीं हो सकता। इसलिए मैं ही स्वयं चला जाता हूँ। और प्रणाम करके चल पड़ा।

इसके बाद याज्ञवल्क्य योगविद्या के प्रमुख आचार्य हिरण्यनाभ के आश्रम में आये। राजर्षि हिरण्यनाभ इक्ष्वाकुवंशीय (रघुवंशी) क्षत्रीय थे। यहाँ उन्होंने योगशास्त्र का भी अध्ययन किया। इस प्रकार उन्होंने सभी विद्यायें आत्मसात् करली। अब कहाँ जाऊँ। क्या पढूँ? यह समस्या याज्ञवल्क्य के सामने थी। इसलिए वे वापस वैशम्पायन ऋषि के आश्रम में ही आ गये।

वहाँ एक विचित्र घटना घटी। कभी-कभी महान लोगों से भी भूल हो जाती है।

एक बार महान आचार्यों की एक सभा हुई थी। उसमें यह शर्त थी कि जो ठीक समय पर उपस्थित नहीं होगा उसे ब्रह्महत्या का पातक लगेगा। विधि विधान की विचित्रता वैशम्पायन के यहाँ उसकी बहन प्रसव हेतु आई हुई थी। वैशम्पायन को प्रातः उठने में थोड़ी देरी हो गई। उतावली में स्नान करने के लिए जाते समय बहन का दो मास का शिशु उनके पैरों के नीचे कुचलकर मर गया। और उन पर बाल हत्या का पातक लग गया। उधर समय पर सभा में न पहुँचने से ब्रह्महत्या का भी पातक लगा। तत्कालीन प्रथा के अनुसार प्रायश्चित हेतु सर्वस्व त्याग कर तीर्थ यात्रा के लिए जाना था। अन्य कोई मार्ग नहीं था। अतः वैशम्पायन बड़े चिन्तित थे। तब भावनावश याज्ञवल्क्य ने कह दिया कि ''गुरुजी! आप चिन्ता मत करो। मैं स्वयं प्रायश्चित करूँगा और आपको पापमुक्त करूँगा।'' इससे वैशम्पायन के अहम को चोट लगी और उसने कहा कि– ''याज्ञवल्क्य! तुझे ज्ञान का नशा चढा है जिसके कारण तू चाहे जैसा बोलता है। तू मुझे पापमुक्त करने वाला कौन है। याज्ञवल्क्य ने कहा, गुरुजी, अतिशय भाव व प्रेम के कारण मैंने ऐसा कह दिया। मुझे समझने में आपकी भ्रान्ति है। परन्तु वैशम्पायन को समाधान नहीं हुआ। तेजस्वी शिष्य को भी आक्षेप सहन नहीं हुआ। अतः उसने कहा कि ''आपसे मैंने विद्या पढी है, इसीलिए ऐसा कहते हो तो आपकी सारी विद्या वापस करता हूँ यह कहकर चजुर्वेद की सारी विद्या उगल दी और आश्रम छोड़कर चल दिए।

अतः याज्ञवल्क्य शून्यवत्, हताश, निस्तेज व निवीर्य पागल व व्याकुल बनकर फिरने लगे। परन्तु

थोड़े ही समय में निराशा को त्याग दिया और पुनः विद्या प्रापत करने का प्रयत्न किया। परन्तु निश्चय किया कि ऐसे व्यक्ति से विद्या लेनी चाहिए, जिसके पास फिर उगलनी न पड़े और भगवान भास्कर (सूर्य) की उपासना की। सूर्य ने प्रेरणा दी कि सरस्वती की उपासना कर। सूर्य से विचार और सरस्वती से शब्द प्राप्त कर उन्होंने स्वतंत्र शुद्ध शुक्ल यजुर्वेद का निर्माण किया।

इस तरह उगली हुई विद्या कृष्ण यजुर्वेद (तैतीरिय शाखा) कहलाई और बाद में निर्माण की हुई विद्या शुक्ल यजुर्वेद कहलाई।

बाद में याज्ञवल्क्य मिथिलापुरी आये। कात्यायनी से विवाह किया। एक दिन कहीं मार्ग में याज्ञवल्क्य, उसके मित्र श्वेत केतु और सोमशुष्म की यज्ञविषयक अग्निहोत्र की चर्चा के समय ब्रह्मवेत्ता, तपोवृद्ध व ज्ञानवृद्ध राजा जनक निकट से गुजरे। अग्निहोत्र के सन्दर्भ में उत्क्रान्ति, प्रगति, आभास, तृप्ति और उनके पुनरावर्तन के सम्बन्ध में इन युवकों को कम समझ वाला बताया तो याज्ञवल्क्य ने राजा जनक से ज्ञान चर्चा की तो राजा जनक बडे प्रभावित हुए।

एक दिन जनक के पिता ने यज्ञ करने का निश्चय किया। उसमें अध्वर्यु (होमकर्ता) याज्ञवल्क्य के गुरु वैशम्पायन थे। पैत्न होता, जैमिनी उद्गाता, सुमन्तु ब्रह्मा थे। बहु से ऋषि, पण्डित, विद्वान यज्ञ में उपस्थित थे। याज्ञवल्क्य युवकों से मान्यता प्राप्त थे। यज्ञ के अन्त में यजमान द्वारा सम्पादित प्रायश्चित विधि के पश्चात यज्ञ में किसी न्यूनता के कारण परिणाम दिखाई न देने पर सभी को आश्चर्य हुआ।

वैशम्पायन ने काफी चर्चा, ग्रंथावलोकन के प्रयासों के बाद भी फिर प्रायश्चित विधि सम्पादित की परन्तु यज्ञ के परिणाम नहीं दिखाई दिए। वैशम्पायन भी सामान्य व्यक्ति नहीं शक्ति थे। यज्ञ की पूर्णाहुति न देखकर राजा जनक याज्ञवल्क्य के पास आये। पीछे-पीछे वैशम्पायन भी थे। दोनों ने यज्ञपूर्ति कराने को कहा। गुरु व राजा जनक दोनो के कहने पर याज्ञवल्क्य ने यज्ञ पूर्ण कराया। यज्ञ के अपेक्षित परिणाम दृष्टिगोचर हुए। तब सभी ब्राह्मणों को दक्षिणा दी जाने लगी। अब यज्ञ की अन्तिम दक्षिणा अध्वर्यु की किसको दी जाये। काफी वादविवाद के बाद केवल ऋषि के निर्णय के अनुसार याज्ञवल्क्य व वैशम्पायन को आधी-आधी दक्षिणा दी गई। राजा जनक ने याज्ञवल्क्य को राज्य मान्यता दी। और याज्ञवल्क्य के सहयोग से धार्मिक विचारों व तत्त्व ज्ञान सुधार व पुनर्निर्माण किया।

याज्ञवल्क्य के काल में हस्तिनापुर के राज्यसिंहासन पर राजा जनमेजय बैठा था। वह याज्ञवल्क्य की महानता से परिचित था। परन्तु वह तत्त्वज्ञान व धर्म के कार्यों में प्रमुख परामर्शदाता वैशम्पायन को मानता था। वैशम्पायन याज्ञवल्क्य को गिराने के लिए धर्म का विध्वंसक कहता था।

जनमेजय का पुत्र शातलिक याज्ञवल्क्य विचारों व कार्यों से प्रभावित था। जनमेजय ने एक यज्ञ में वैशम्पायन को बुलाकर कहा कि मुझे एक अश्वमेघ यज्ञ करना है, उसमें अध्वर्यु याज्ञवल्क्य रहेंगे, आप नहीं। तोा वैशम्पायन ने अपना अपमान समझकर याज्ञवल्क्य को धर्मविध्वंसक आदि शब्दों से निन्दा

की और ब्राह्मणों का ायज्ञ में जाने से मना किया। याज्ञवल्क्य ने युवान ब्राह्मणों को तैयार करके यज्ञ पूर्ण किया। वैशम्पायन के अराजकतापूर्ण विघ्नों के कारण जनमेजय याज्ञवल्क्य से प्रेमवश राज त्यागकर वन में चला गया।

एक बार याज्ञवल्क्य वन में समाधि लगाये बैठे थे। तब उनका भक्षण करने एक व्याघ्र आया। तभी संयोग से राजा जनक का मित्र अमात्य आया था। उसने व्याघ्र का वध करके याज्ञवल्क्य को बचाया। आँख खुलने पर घटना को जानकर उनका प्रेम इतना बढ गया कि मित्र के घर आना जाना बढ गया।

मित्र की मैत्रेयी नाम की पुत्री थी जिसका पालन पोषण बचपन से ही सगी मौसी गार्गी के आश्रम में हुआ था। ज्ञान सम्पन्न होकर मैत्रेयी पिता के घर आ गई थी। वहाँ याज्ञवल्क्य की शास्त्र विचारधारा सुनकर उसके प्रति आकर्षित हो गई। परन्तु वह याज्ञवल्क्य की कार्यव्यस्तता के कारण उनसेनहीं मिल सकी। एक दिन उनकी पत्नी कात्यायनी से मिली। दोनों का गाढप्रेम हो गया।

एक बार राजा जनक ने ज्ञान पियासा के कारण विद्वानों की एक सभा बुलाई। उसमें याज्ञवल्क्य भ आये। वहाँ सभा में जनक ने घोषणा की– यहाँ स्वर्णमण्डित एक सहस्र गायें खड़ी हैं जो ब्रह्मनिष्ठ और महान ज्ञानी हो वह इन गायों को ले जाये। याज्ञवल्क्य ने शिष्यों को अपने आश्रम में ले जाने का आदेश दे दिया। तब विद्वानों ने एतराज किया और शास्त्रार्थ के लिए आह्वान किया। तब महान पण्डित अश्वल, हरत्कारन, कौशिकतेय, प्रशस्तिचाक्रायण, गार्गी, गुरु शाकल्य ने प्रश्न किए। याज्ञवल्क्य ने यथोचित उत्तर देकर दिग्विजय प्राप्त की। तब मैत्रेयी का आकर्षण और बढ गया। परिणामस्वरूप कात्यायनी की सहमति से मैत्रेयी भी पत्नी रूप में रही।

इसी काल में एक दूसरी घटना भी घटी। याज्ञवल्क्य की बहन कंसारी बालविधवा उनके आश्रम में रहती थी। पवित्र अन्तःकरण और शुद्ध बुद्धि से ईश्वर भक्ति करते हुए जीवन व्यतीत करती थी। एक दिन ऋतुस्राव के चतुर्थ दिन स्नानान्तर बदलने के लिए जिस वस्त्र को ढूंढ रही थी, वह उसे नहीं मिला तब वहाँ पड़ी हुई एक धोती पहन ली। उसके दो मास बाद पता चला कि वह गर्भवती है। अति धार्मिक कंसारी यह नहीं समझ सकी कि यह कैसे हुआ? अतः वह तीर्थयात्रा के बहाने याज्ञवल्क्य के आश्रम से चली गई। वहाँ वन में बालक को जन्म दिया और पश्चाताप करती हुई एक पीपल के नीचे बालक को छोड़कर चली गई। बाद में वह बालक पिपालाद ऋषि हुआ। नारद ऋषि ने पिपालाद को उसके जन्म की कथा व माता का नाम बताया। तो वह पिप्लाद याज्ञवल्क्य पर बड़ा क्रोधित हुआ और अग्नि की उपासना करने लगा। इस अग्नि उपासना के कारण एक कृत्या का जन्म हुआ। तब पिप्लाद ने याज्ञवल्क्य को मारने के लिए उस कृत्या को आदेश दिया। याज्ञवल्क्य ब्रह्मदेव व विष्णु भगवान के द्वारा भी बचाव न पाकर शिवजी का आह्वान किया। उनकी भी असमर्थता जानकर अपनी योगविद्या से

याज्ञवल्क्य अदृश्य हो गये और शिवजी के चरणनख में घुस गये। अब कृत्या निराश होकर लौट गई। तब शिवजी ने उन्हें योगीश्वर की उपाधि दी।

इस तरह याज्ञवल्क्य पण्डित, दृष्टा, दार्शनिक, विचारक, सुधारक, कर्तृत्ववान और यौगीश्वर के रूप में प्रसिद्ध हुए। उनके चन्द्रकान्त, महामेघ और विजय नाम के तीन पुत्रों का उल्लेख मिलता है। कहीं पर कात्यायनी से कात्यायन नाम का एक पुत्र तथा मैत्रेयी के कोई सन्तान न होने का लेख मिलता है।

कात्यायनी बडी प्रभावशाली व कर्मठ स्त्री थी। उसने याज्ञवल्क्य के आश्रम को जिसमें लगभग 60 हजार विद्यार्थी पढते थे, संभाला। मैत्रेयी ने याज्ञवल्क्य से आत्मज्ञान पाया।

ऐसे तेजस्वी, दिव्य चरित्रवान, पुण्य पुरुष भगवान योगीश्वर याज्ञवल्क्य को अनन्त प्रणाम।

खोहर, बहरोड, अलवर (राज.)